वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में पद्धति द्वय की प्रासंगिकता

आरती सिंह*

आज ज्ञान के प्रसार एवं द्रुत तकनीकी विकास के कारण शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिदिन अभिनव प्रयोग हो रहे हैं, शिक्षण को सफल एवं उन्नत बनाने के लिए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में भी उपयुक्त अन्वेषण होते रहते हैं। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में शिक्षण साधनों की अहम् भूमिका सदैव अविवादास्पद रही है और इसी बदलते स्वरूप एवं परिणामोन्मुखी शिक्षा के विकास हेतु देश की अनेक समस्याओं की जिजीविषा ने शैक्षिक-तकनीकी विषय की ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया है। किंतु बदलते परिवेश में भी इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि प्राचीन भारतीय जिजीविषु अपने दर्शन व परंपरागत मूल्यों की पृष्ठभूमि के आधार पर यह सिद्ध करते चले आ रहे हैं कि मानव शरीर में निहित पूर्ण चेतना उसे सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी उद्घोषित करने हेतु बाध्य करती है। वर्तमान समय में शिक्षा में परंपरागत मूल्यों के साथ-साथ वैज्ञानिक चिंतन को समाहित करना भी आवश्यक तथा विचारणीय तथ्य है, क्योंकि शिक्षा की पूर्णता तभी है जब मानव सांस्कृतिक रूप से चैतन्य, मूल्यों के प्रति सजग तथा वैज्ञानिक विवेक व विचार के द्वारा व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने की क्षमता उत्पन्न करे तथा समकालीन शिक्षा के द्वारा आधुनिक एवं विकासशील मानव-जीवन के दर्शन का निरूपण किया जाए, जिससे उसमें स्वानुभूति की भावना उत्पन्न हो। अस्तु, आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में परंपरागत भारतीय चिंतन तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की 'पद्धति द्वय' का समायोजन अपेक्षित है।

ज्ञातव्य है कि प्राचीन भारत के मनीषियों को इस तथ्य का ज्ञान था कि मानव मनश्चेतना ही सर्वज्ञान स्रोत है, वह इस तथ्य से अवगत थे कि सामान्य मनश्चेतना की स्थिति में व्यक्तिगत इन्द्रियानुभूत

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, डिपार्टमेंट ऑफ़ पेडागॉजिकल साइंसेज़, फ़ैकल्टी ऑफ़ एजुकेशन, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश

दृष्टज्ञान के भावात्मक तथा वस्तुपरक घटक होते हैं। अतः उन्होंने व्यक्तिगत इन्द्रियानुभूति को सत्य ज्ञान का विश्वसनीय साधन नहीं माना है, यद्यपि सत्य ज्ञान दृष्टिगत करने हेतु यह आवश्यक है कि मनश्चेतना की स्थिति अथर्वा तथा निष्काम हो, आज के आधुनिक युग में आश्चर्यजनक वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव चिंतन को झकझोर कर रख दिया है। परिणामस्वरूप ज्ञान की प्रत्येक विधा में वैज्ञानिकता को कसौटी माना जाने लगा है, चूँकि विज्ञान की सफ़लता के कारण उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है, अतः अब शिक्षा के क्षेत्र में भी वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग अपरिहार्य समझा जाने लगा है। आज के मानव चिंतन ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य के हाथ में एक अमोध-शक्ति आ गई है और अब वह दिन दूर नहीं जब वह इस शक्ति के द्वारा सृष्टि के रहस्य को जान लेगा। शिक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक ज्ञान पद्धति का उत्तरोत्तर प्रयोग हो रहा है, परंतु वैज्ञानिक ज्ञान पद्धति की एक सीमा है, इसके द्वारा केवल देश, काल, ऊर्जा तथा पदार्थ को ही समझा जा सकता है, व्यक्ति की चेतना, मनस् और मस्तिष्क को समझने के उपाय संभव नहीं हैं। यही कारण है कि वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में पद्धति द्वय का सुन्दर समन्वय अपेक्षित है, अर्थात् शिक्षा में विज्ञान व तकनीकी के प्रयोग के साथ-साथ परंपरागत भारतीय चिंतन की गरिमा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाए।

पद्धति द्वय (परंपरागत भारतीय चिंतन एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण)

विज्ञान ऐसे व्यवस्थित ज्ञान के रूप में जाना जाता है जो अद्वैत की ओर उन्मुख है तथा इसके सत्य सर्वव्यापी हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा की वैज्ञानिकता का आग्रह वस्तुगत व्यवहारिकता, सर्वदेशीय एवं सर्वकालिक शिक्षण प्रदान करने के लिए बाध्य करता है। अस्तु वैज्ञानिक पद्धति आगमनात्मक पद्धति है जो पदार्थ ज्ञान प्राप्त करती है, इसमें देय तत्व प्रमुख है। परंतु ज्ञाता का स्वरूप क्या है, स्रोत क्या है, इसकी जिज्ञासा इस पद्धति में कतई दृष्टिगत नहीं होती। वैज्ञानिक पद्धति में अनुभव की विशेषता है परंतु बुद्धि का स्रोत क्या है, इसका विचार नहीं पाया जाता। पश्चिम में सुकरात[1] ने अवश्य कहा कि ज्ञान सद्गुण है, उसने ज्ञान का स्रोत आत्मा को माना। 'स्वयं का ज्ञान', ये उसका आदर्श वाक्य था, लेकिन आगे प्लेटो के शिष्य अरस्तू[2] ने कहा कि 'ज्ञान विज्ञान है' व आज का वैज्ञानिक कह उठा कि 'विज्ञान यन्त्र है'। इस प्रकार समस्त वैज्ञानिक पद्धति वस्तुगत जगत में अध्ययनरत है तथा इस तथा इस वस्तुगत पद्धति में आत्मगत भूमिका का अभाव है। यद्यपि पश्चिम के कई चिंतकों ने सहज ज्ञान को स्वीकारा है एवं काण्ट[3] ने यहाँ तक कहा कि 'अनुभव, बिना बुद्धि के रिक्त है और बुद्धि अनुभव के अभाव में अंधी है।' यह भी एक विचार है कि मनुष्य प्रकृति में जो प्रत्यक्षीकरण करना चाहता है, वही उसे दृष्टिगत होता है। काण्ट ने यहाँ तक कहा था कि 'मनस् प्रकृति का नियमन करता है' इससे सिद्ध होता है कि हमारी शक्तियाँ ज्ञानाभाव तथा संकल्प अथवा नानात्मक संवेदनाएँ आदि चेतना पर आधारित हैं। यही कारण है कि शिक्षा में समान अवसर तो दिए जा सकते हैं किंतु प्रत्येक विद्यार्थी की ग्रहणशीलता, उसके संस्कार, उसका वंशानुक्रम एवं उसका परिवेश निर्धारित

करता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक बालक एक निजी प्रवृत्ति लेकर आता है व उसी प्रवृति के अनुसार उसकी रुचि विद्या विशेष की ओर उन्मुख होती है तथा वह अध्ययन कर पाता है। अतः मनोवैज्ञानिक रूप से यह असंभव है कि समस्त बालकों को एक विशिष्ट प्रकार की शिक्षा में समान रूप से दक्ष बनाया जा सके। मनोविज्ञान भी व्यक्तिगत भेद को स्वीकारता है।

स्वामी विवेकानंद[4] ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ''कोई शिक्षक शिक्षार्थी को शिक्षित नहीं कर सकता, शिक्षार्थी स्वयं अपने को शिक्षित करता है''। आधुनिक वैज्ञानिक अथवा वस्तुगत विधि में यही दोष है कि वह बालक की चेतना व उसकी मानसिक प्रवृत्ति की अवहेलना करता है तथा मनचाहा परिणाम प्राप्त करना चाहता है, किंतु यह असंभव है। भारतीय चिंतन में वैयक्तिक चेतना को मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त के कार्यात्मक रूप में मान्यता प्रदान की गई है, अर्थात् जिसे हम जीवात्मा अथवा वैयक्तिक चेतना कहते हैं, वह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का ही कार्य है।

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि भारतीय चिंतन इन चारों को भौतिक मानता है। अत: भौतिक होने के कारण स्वयं क्रिया नहीं कर सकते, परंतु अस्तित्व में विद्यमान चेतना के संपर्क से यह क्रियाशील हो उठते हैं। इनकी क्रियाशीलता का स्वरूप प्रकृति के तीन गुणों सत, रज, तम से प्रभावित होता है। यहाँ यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि भारतीय चिंतन समस्त मानव अस्तित्व को प्रकृति का उपहार मानता है, अर्थात् वह भौतिक है साथ ही निष्क्रिय भी है, केवल पुरुष अथवा चेतना की विद्यमानता के कारण समस्त अस्तित्व स्पंदित रहता है तथा कार्य करता है। सत, रज, तमोगुण के अपने-अपने स्वरूप हैं, उदाहरणार्थ—सत्वगुण प्रकाश का, रजोगुण प्रवृत्ति का तथा तमोगुण मोह का प्रतीक है। दूसरी ओर वैज्ञानिक दृष्टि से सत्वगुण प्रकाश का, रजोगुण गति का तथा तमोगुण जड़ता का प्रतीक है। सत व तम दोनों निष्क्रिय हैं, रज दोनों गुणों को उद्वेलित करता रहता है। अतः मनुष्य की मानसिक संरचना पर सत, रज, तम आवश्यक रूप से प्रभाव डालते हैं तथा बालक की शिक्षा को दिशा प्रदान करते हैं। दुर्भाग्य से वैज्ञानिक पद्धति में इस मानसिक संरचना पर ध्यान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित आधुनिक शिक्षा व्यक्तित्व निर्माण की ओर ध्यान नहीं देती।

व्यक्तित्व निर्माण का स्रोत आत्मज्ञान अथवा बालक की मानसिक पृष्ठभूमि है और यही उसके नैतिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है। आधुनिक शिक्षा में इस स्रोत की उपेक्षा अपनी चरम सीमा पर है तथा बालक का केवल यंत्रीकरण ही किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में आज जिस उदात्य संस्कृति की खोज की जा रही है, मानवीय व्यवहार के विघटन के जिन कारणों को खोजा जा रहा है, वे कारण वैज्ञानिक पद्धति में मिलने असंभव हैं। यही कारण है कि आज का विद्वत जगत सांस्कृतिक संक्रांति काल से तो पीड़ित है ही, साथ में सामाजिक व्यवहार में विलक्षण आपाधापी, बर्बरता, क्रूरता, हिंसा, जघन्य अपराधों को दूर करने हेतु प्रत्यनशील भी है। परंतु आज ज्ञान प्रदान करने का अर्थ मात्र सूचना के अखंड भंडार से

लिया जाता है, वह भी भौतिक जगत की सूचनाएँ जो मस्तिष्क को घनीभूत कर देती हैं। उसमें मस्तिष्क तथा हाथ तो दीक्षित हो जाते हैं, परंतु हृदय अथवा संवेदनाएँ पूर्णरूपेण उपेक्षित रहती हैं। मानव अथवा उसका हृदय ही आध्यात्मिक जीवन का केंद्र है तथा आध्यत्मिक जीवन की मान्यता है कि समस्त ब्रह्मांड एक अखण्ड जीवन की अभिव्यक्ति है जो चेतना स्वरूप है। तार्किक रूप से समस्त ब्रह्मांड में ऐक्य परिलक्षित होता है। ऐसे दर्शन में ही मानव व्यवहार को उदात्य बनाया जा सकता है, जो एक पुनर्सृजित मानव के लिए संभव है तथा पुनर्सृजित मानव वही हो सकता है जो ब्रह्मांडीय एकता ही नहीं वरन् ब्रह्मांडीय चेतन-एकता में विश्वास करता है। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति अथवा वस्तुगत विधि में बुद्धि या चिंतन-शक्ति पर तो बल है, परंतु बोध-शक्ति पर बल नहीं है। बोध-शक्ति बोधमयता है व उसमें भावमयता के साथ-साथ संवेदनशीलता भी सम्मिलित है। यह बोधशक्ति बुद्धि अथवा चिंतन-शक्ति के ऊपर अथवा उससे परे एक ब्रह्मांडीय बोधशक्ति या परमचेतना अथवा ईश्वर है, ऐसा भारतीय चिंतन के अंतर्गत मान्य है। संवेदनशीलता का बुद्धि अथवा तर्क-शक्ति से कोई संबंध नहीं है। इस प्रकार शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य मानवीय संस्कृति का निर्माण है व उस संस्कृति का आधार 'वसुधैव कुटुंबकम्' है। वसुधैव कुटुंबकम् की भावना विराट चेतना पर आधारित है। यही कारण है कि भारतीय चिंतन ने उद्घोष किया कि 'यह मेरा है, यह तेरा है, यह क्षुद्र चेतना से संबंधित है'। 'उदार चरितानाम् वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना का प्रयोग वर्तमान शिक्षा का आधार होना अपेक्षित है।

वैज्ञानिक पद्धति द्रव्य जगत से संबंधित है व इसका मानवीय चेतना के उन्नयन से कोई संबंध नहीं है। आज उस सामाजिक संस्कृति की आवश्यकता है जो समस्त प्रकृति के घटकों, यथा — मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति व जड़ भूधरों को जोड़ने का प्रयास करती है, क्योंकि यह प्रकृति के समस्त घटक एकमात्र चेतना के अंग थे। भारतीय चिंतन जो एक अखण्ड चेतना को सर्वस्व मानती है, जागतिक अभ्युदय के साथ-साथ आत्मकल्याण को भी अपना लक्ष्य बनाती है। वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित शिक्षा अनुभववादी है तथा वह भौतिक समृद्धि अथवा प्रेयस को प्राप्त करने पर बल देती है। भारतीय चिंतन में इसी कारण मानव के चार मूल्य—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष उद्घोषित करके लौकिक व अलौकिक जीवन का समन्वय किया गया है तथा प्रेयस से निःश्रेयस की ओर गमन का मार्ग प्रशस्त किया है। जिद्दू कृष्णमुर्ति, जिन्होंने अपने शैक्षिक चिंतन से विश्व मनीषा को उद्वेलित कर दिया है, ने ठीक ही कहा है, 'बिना कल्याणकारी एवं प्रेम की भावना के व्यक्ति शिक्षित नहीं कहा जा सकता'।

भारतीय चिंतन में परमचेतना को आधार मानकर तीन प्रश्नों का सटीक उत्तर देने में सफलता प्राप्त की गई है, ये प्रश्न इस प्रकार हैं—

1. मैं क्या जानूँ?
2. मैं क्या करूँ?
3. मैं क्या बनूँ?

यही मानव जीवन की जिज्ञासा है। इसे भारतीय चिंतन ने चेतना-विज्ञान, विचार-शक्ति एवं ज्ञान-पद्धति के विशद् अध्ययन के आधार पर आत्मा

की अमरता, कर्म की अकाट्यता एवं पुनर्जन्म के सम्प्रदायों पर दर्शन का प्रासाद खड़ा किया। समस्त विश्व को कर्मप्रधान माना गया है। मानव जीवन में चेतना की व्याप्ति व उसकी अमरता तथा भौतिक शरीर की मरणशीलता को स्वीकार कर संसार के रंगमंच को आत्मा की यात्रा माना गया है। इसीलिए यह सिद्ध होता है कि मानव का प्रथम कर्तव्य है कि सर्वप्रथम वह जाने कि वह कौन है तथा उसे क्या करना चाहिए व अंततोगत्वा उसे क्या बनना चाहिए।

इस कर्तव्य की पूर्ति शिक्षा के माध्यम से तभी हो सकती है जब पद्धति द्वय अर्थात् परंपरागत भारतीय चिंतन व आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के मध्य संबंधों की एक कड़ी स्थापित की जाए तथा वह संबंधों की कड़ी है– भौतिक जगत के ज्ञान को अंधविश्वासों की पृष्ठभूमि से हटाकर उसके उचित स्वरूप को स्थापित करना। वैज्ञानिक पद्धति ने मानव-जीवन की बहुत-सी शंकाओं को निर्मूल सिद्ध किया है, वस्तु जगत के ज्ञान के भंडार में वृद्धि की है, नवीनतम आविष्कारों के माध्यम से उसने आधुनिक मानव समाज को अनेकानेक सुख-साधनों से परिपूर्ण किया है, साथ ही ऐसी-ऐसी अभूतपूर्व सफ़लताओं से मानव जगत को कृतज्ञ भी किया है, जिनकी कल्पना प्राचीन मानव नहीं कर सकता था। जिसे हम अभ्युदय कहते हैं, उस क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति को नकारा नहीं जा सकता। वहीं पर यह स्वीकार करना होगा कि वैज्ञानिक पद्धति ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष एवं क्रिया को प्रभावित किया है, जिससे हमारी शिक्षा भी अछूती नहीं रह सकी। शिक्षण प्रक्रिया के शिक्षण यंत्र, रेडियो, टेलीविज़न, टेपरिकॉर्डर, कंप्यूटर तथा भाषा प्रयोगशाला आदि का प्रयोग शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किया जा रहा है। इस प्रकार शिक्षण में यंत्रों के प्रयोग से शिक्षण प्रक्रिया का यंत्रीकरण किया जा रहा है। ज्ञान के संचय, प्रसार तथा बुद्धि के लिए शिक्षण में सहायक सामग्री तथा यंत्रों का प्रयोग किया जाने लगा है। इनके प्रयोग से एक प्रभावशाली शिक्षक शिक्षार्थियों के वृहद समूह को अपने ज्ञान एवं कौशल से लाभान्वित करा सकता है।

वैज्ञानिक पद्धति का लक्ष्य परंपरागत भारतीय चिंतन के प्रत्ययों को समाप्त करना न होकर विरासत की रक्षा करना, उसे विचारों तथा वैज्ञानिक तरीकों से संपन्न कराना है। अतः वैज्ञानिक पद्धति को ऐसी अवधारणा अपनानी होगी जो राष्ट्र की शैक्षिक आवश्यकताओं की व्यष्टि, समष्टि दोनों ही स्तर पर पूर्ति करेगी। वैज्ञानिक ज्ञान-पद्धति शिक्षा द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आवश्यकताओं के आधार पर विद्यार्थियों को पहचान प्रदान करती है व उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति करती है। अतः परंपरागत भारतीय चिंतन व आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया जाए। रचनात्मक एवं योगात्मक मूल्यांकन के लिए शुद्ध एवं अधिक स्पष्ट तकनीकियों को विकसित करें तथा भौतिक एवं मानवीय संसाधनों को वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर व्यवस्थित व कार्यान्वित किया जाए।

शिक्षा में समस्या के समाधान के लिए कुछ तार्किक तथा व्यवस्थित पदों का अनुकरण करने से शिक्षा की प्रभावशीलता में वृद्धि होगी। यही

वैज्ञानिक पद्धति है जिसका प्रयोग करने से शिक्षा के परंपरागत मूल्यों एवं आधुनिक प्रत्ययों में सुंदर समन्वय स्थापित किया जा सकता है (आरेख-1)। ब्रह्मांडीय मनस् है जो परमचेतना की ही अभिव्यक्ति है। फिर भी वैज्ञानिक पद्धति में चेतना तथा विचार के पक्ष को उपेक्षित किया गया है। परंपरागत भारतीय

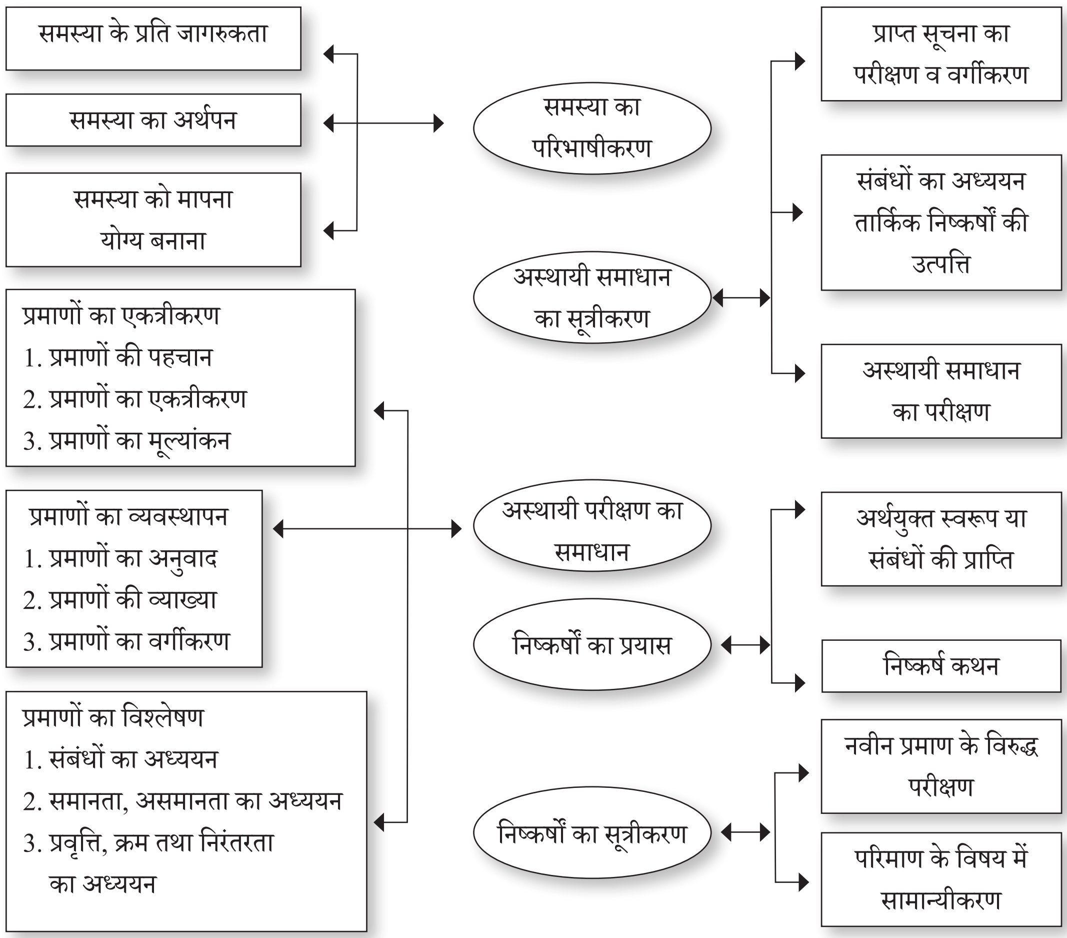

आरेख संख्या 1– वैज्ञानिक ज्ञान पद्धति का स्वरूप

वैज्ञानिक पद्धति कोई वस्तु नहीं है, यह खोज का एक दृष्टिकोण है और इस दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में मानव की विचार शक्ति ही है, जिसका आधार चिंतन विधियाँ एक महान समाज की उत्पत्ति करती हैं तथा आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति समाज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य को एक नवीन स्वरूप प्रदान करती हैं।

वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में पद्धति द्वय की प्रासंगिकता

वर्तमान समय में शिक्षा में परंपरागत मूल्यों के साथ-साथ वैज्ञानिक चिंतन को समाहित करना भी आवश्यक तथा विचारणीय तथ्य है, क्योंकि शिक्षा की पूर्णता तभी है जब मानव सांस्कृतिक रूप से चैतन्य, मूल्यों के प्रति सजग तथा वैज्ञानिक विवेक व विचार के द्वारा व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने की क्षमता उत्पन्न करे, अस्तु आधुनिक शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में परंपरागत भारतीय चिंतन तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की 'पद्धति द्वय' का समायोजन अपेक्षित है। ज्ञानाधारित विश्व एक खुला मंच है जिसमें सृजनात्मकता एवं उपलब्धि के नवीन आयाम खुल रहे हैं। आइंस्टीन के अनुसार ''मैंने अपने दीर्घ जीवन में एक सबक सीखा है। यथार्थ के सम्मुख सारे विज्ञान का मापदंड आदिम तथा अपरिपक्व है, फिर भी हमारे पास वही सबसे बहुमूल्य वस्तु है''। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा में वैज्ञानिक पद्धति को केंद्रीय तथा महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए। इसका प्रयोग सीमा के भीतर करना श्रेयस्कर है, अन्यथा इस सीमा की अवहेलना मनुष्य की प्रगति व उत्तरजीविता के लिए संघातिक होगी। केवल तर्कयुक्त होना ही वास्तविक चिंतन नहीं है। चिंतन में सृजनात्मकता का अंश आवश्यक है। मात्र तर्कयुक्त होने का अर्थ है कि कार्य-कारण शृंखला का तत्व तो विद्यमान है, परंतु नव-प्रवर्तन अथवा सृजनात्मकता का तत्त्व उसमें नहीं है। चिंतन में तार्किकता के अतिरिक्त कुछ और भी अपेक्षित है। अतः विज्ञान तथा परंपरागत चिंतन के मध्य के व्यवधान समाप्त होने चाहिए, अन्यथा शिक्षा से विशेषज्ञ तो उत्पन्न होंगे परंतु शिक्षित मानव नहीं। व्यक्ति में ज्ञान के साथ-साथ विवेक तथा नैतिक मूल्यों का भी विकास अति आवश्यक है इनके अभाव में व्यक्ति में अहंकार उत्पन्न हो जाएगा। विज्ञान एवं परंपरागत चिंतन के बीच के अंतराल को समाप्त करने में यह ध्यान रखा जाए कि विज्ञान की स्वायत्तता तथा वस्तुनिष्ठता पर आँच न आए। मानव को अति महत्त्वाकांक्षी नहीं होना चाहिए। विज्ञान के क्षेत्र में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है जिसके फलस्वरूप विज्ञान को परंपरागत चिंतन के साथ आत्मसात करने की दिशा में पूर्णतया आशातीत संभावनाएँ प्रकट होने लगी हैं।

आर. डब्ल्यू. स्पेरी[5,6] के अनुसार ''एक बहुत प्रभावपूर्ण सूत्र में आबद्ध करने वाले व्याख्यात्मक मनोभाव का उद्भव हो रहा है जिसका सुदूरगामी प्रभाव केवल विज्ञान के साथ नहीं अपितु उन तात्विक मूल्यों तथा आस्थागत आदर्शों पर भी है जिसके द्वारा मानव जाति जीने का प्रयास करती है व जिसमें उसे जीवन की सार्थकता मिली है''। मनुष्य के सौभाग्य के रूप में विज्ञान, अप्रत्याशित, किंतु धीरे-धीरे सतत् एकतापूर्ण विश्वमत की ओर अग्रसर हो रहा है, जिसमें ज्ञान तथा मूल्य दोनों ही पूरक व परस्पर शक्तिदायी रूप में समाहित होंगे, ऐसा माना जाता है। आज की सारी समस्याएँ किसी एक व्यक्ति अथवा एक राष्ट्र से संबंधित न रहकर विश्व की समस्याएँ बन गई हैं क्योंकि विज्ञान के युग में सारा विश्व एक सूत्र में पिरोया हुआ जान पड़ता है। वर्तमान समय में सारा ब्रह्मांड मनुष्य की मुट्ठी में है, यही कारण है कि उसमें वैयक्तिक चिंतन का नहीं, वरन् सम्पूर्ण

ब्रह्मांडीय चिंतन का प्रत्यय शिक्षा के द्वारा विकसित होना चाहिए, उसमें सर्वधर्म समभाव की भावना की तभी उत्पत्ति होगी जब उसकी मानसिकता, ज्ञान के साथ-साथ उसमें मानव बोध को भी विकसित करे। शिक्षा के समन्वित ढाँचे के लिए सर्वप्रथम बात यह है कि यह माना जाए कि आधुनिक विश्व एक सार्वभौमिक विश्व है। संपूर्ण मानव जाति की नियति एक साथ है। विज्ञान के द्वारा ज्ञात होता है कि आधुनिक अर्थ में संपूर्ण मानव जाति एक व्यवस्था में बँधी है। अतः यह संभव नहीं कि एक देश अथवा अन्य देशों के एक भाग में प्रगति एवं विकास किया जाए तथा दूसरा भाग उपेक्षित रहे। पद्धति द्वय की प्रासंगिकता तभी सिद्ध होगी जब मानव जाति को अविभाज्य माना जाए। आज विज्ञान तथा अहिंसा का नाद परस्पर समान्तर रूप से प्रतिध्वनित हो सकता है तथा विश्व के समक्ष सब के लिए स्वतंत्रता, न्याय, संपन्नता, भ्रातृत्व, हर्ष की प्राप्ति, संवर्धन का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए।

समकालीन शिक्षा को सुदृढ़ तथा सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है कि मानव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उत्पत्ति के साथ-साथ उसको नैतिकता के प्रति भी चैतन्य किया जाए। इसी पर मानव का आंतरिक संतुलन तथा उसका अस्तित्व निर्भर करता है। उसके क्रियाकलापों में नैतिकता से ही जीवन सौंदर्यशाली तथा प्रतिष्ठित होगा। उसके जीवन को एक जीवंत शक्ति बनाना तथा उसे स्पष्ट अन्तश्चेतना में लाना ही समकालीन शिक्षा का सर्वोपरि कार्य है। नैतिकता का आधार पुराण अथवा किसी संदेहास्पद कल्पित गाथा पर आधारित न होकर यथार्थ के धरातल पर होना चाहिए।

समकालीन शिक्षा के द्वारा आधुनिक एवं विकासशील मानव-जीवन के दर्शन का निरूपण किया जाना चाहिए, जिससे उसमें स्वानुभूति की भावना उत्पन्न होगी। साथ ही वह परिवेश को जानेगा जिसमें उसे रहना है, तभी वह अपनी अभिवृत्ति के निर्माण के लिए सक्रिय प्रयास कर पाएगा, जिससे परंपरागत मूल्यों के प्रति उसकी चेतना तथा विचार ज्ञात हो सकते हैं। उसको गागर में सागर उडेलना भी आना चाहिए जैसा कि कवि ब्लेक ने भी कहा है ''एक सिकता कण में संसार को देखना, एक वन पुष्प में स्वर्ग की कल्पना करना, अपने हाथ की हथेली में अनंत संसार को देखना और एक घंटे में शाश्वत का अनुभव करना मानव के व्यक्तित्व की व्यापकता को दर्शाता है''। इसी बात को इमर्सन ने भी एक स्वर में स्वीकारा ''वह शाश्वत को एक घंटे में समेट देता है व एक घंटे को शाश्वत में फैला देता है''। अर्थात् मानव के अन्तस में शक्ति का अपार भंडार है, जिसका प्रकटन शिक्षा ही कर सकती है। समकालीन शिक्षा का उद्घोष है कि मानव न तो केवल भौतिकता के उन्माद में ही खोकर जी सकता है और न केवल आध्यात्म की उड़ान भर सकता है। संसार की भौतिकता की नींव पर आध्यात्म की गरिमा का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है, जिस पर मानव की समग्रता का शिलाखंड खड़ा किया जा सके। आज आवश्यकता है परंपरागत मूल्यों के औचित्य को ध्यान में रखकर उन्हें मान्यता देने की और नवीन मूल्यों की सार्थकता के प्रति सजगता का आचरण अपनाने की। वैज्ञानिक युग में केवल आध्यात्मिक मूल्यों के सहारे ही जीवन नैया को नहीं

Chapter 5.indd 48 5/11/2017 2:56:22 PM

खे सकते। बालक को शिक्षा के द्वारा यथार्थ की भूमि पर खड़े होकर मूल्यों की यथार्थता तथा वास्तविकता का अन्वेषण करना होगा, तभी नैतिक विकास द्वारा एक आदर्श महल का निर्माण हो सकेगा। अन्यथा अपनी समस्त गौरवशाली उपलब्धियों के उपरांत भी व्यक्ति चिरपोषित आध्यात्मिक लक्ष्य की उन्नति में असफल रहेगा। अतः ऐसे नवीन मूल्यों को शिक्षा के द्वारा आत्मसात करना होगा जो व्यक्ति के वैज्ञानिक तथा भौतिक उन्नति के पथ को आलोकित करते हुए आध्यात्मिक व नैतिक प्रगति के नवीन आयाम प्रस्तुत करे।

समकालीन शिक्षा में समग्र शिक्षा के संदर्भ में स्वीकारा गया है कि ऐहिक के साथ-साथ आध्यात्मिक मूल्यों का विकास किया जाए। सामान्यतः विद्यार्थियों द्वारा इनका विकास तत्काल नहीं हो सकता, इन्हें अभ्यास के द्वारा विकसित करना होगा। शिक्षा के द्वारा यह प्रयास करना है कि विद्यार्थी यह अनुभव करे कि उसे अपने कार्य-क्षेत्र में अपनी विवेक-बुद्धि, संकल्प, हृदय और बोध को विकसित और परिष्कृत करने की आवश्यकता है, इसके लिए उसकी मानसिक क्षमता अन्तर्बोध से अनुप्राणित हो और वह ऐहिक अथवा सापेक्ष मूल्यों को आध्यात्मिक अथवा निरपेक्ष मूल्यों में रूपांतरित करने में समर्थ हो। जिसके लिए उसे स्वानुशासन और आत्मनिग्रह का भाव उत्पन्न करना है। स्वानुशासन आरोपित अनुशासन न होकर उच्च चरित्र व संकल्प से विकसित हो सकता है। अंधकार के ऊपर प्रकाश की व असत्य के ऊपर सदैव सत्य की विजय होती है। यदि स्वानुशासन, सामाजिक व नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा, पोषण एवं संवृद्धि के गुणों को समकालीन शिक्षा विकसित नहीं कर सकेगी तो इस प्रकार की शिक्षा निरर्थक है। भारतीय आदर्शों तथा आस्थाओं के अनुरूप भारतीय मनीषियों के दार्शनिक विचारों के महत्व को विदेशियों ने भी गहनता से समझने का प्रयास किया है, उन्होंने यह जान लिया है कि भारतीय ऋषि, महर्षियों द्वारा प्रतिपादित जीवन-मूल्यों तथा जीवन-मूल्यों से समन्वित शैक्षिक उद्देश्य निश्चय ही शाश्वत रूप से पूर्ण व्यवस्थित एवं सन्तुलित समाज की संरचना करने में सक्षम हैं।

आज कुछ भारतीय भले ही पाश्चात्य नवीनीकरण, वैचारिकता द्वारा प्रतिपादित एवं अनुमोदित तथ्यों व सिद्धांतों की ओर उन्मुख हो गए हों परंतु वास्तविकता यही है कि आज प्रयुक्त होने वाले अधिकांश सिद्धांत भारतीय परंपरा की ही देन हैं, चाहे वह न्याय दर्शन द्वारा प्रतिपादित ज्ञान सिद्धांत ही क्यों न हो, जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणजन्य ज्ञान का अत्यंत वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है, अत्यन्त मौलिक एवं प्राचीन होते हुए भी आधुनिक समय में अपना स्थान बनाए हुए हैं। यह अलग बात है कि इन परंपरागत सिद्धांतों को पाश्चात्य दार्शनिक तथा शिक्षाविदों के नाम से संबद्ध कर प्रस्तुत किया गया है। प्रत्यक्ष की निर्विकल्पक एवं सविकल्पक ज्ञान की स्थितियों के माध्यम से संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का स्पष्ट एवं तार्किक विवेचन भारतीय दर्शन द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसे मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित माना जाता है, यथार्थ रूप से मनोविज्ञान स्वयं दर्शन से निःसृत एक विषय है तब यह मानना निश्चित रूप से अनुचित है।

वर्तमान युग का यह उद्‌घोष है कि संसार की भौतिकता एक नींव बनेगी जिस पर आध्यात्म की गरिमा का प्रासाद होगा और समग्रवादी मानवता उसमें वास करेगी। आधुनिक मानव यथार्थता के आसन पर बैठकर योग करना चाहता है ताकि इंद्रियों को यथास्थान उचित रूप से नियंत्रित करते हुए अभ्युदय की ओर उन्मुख होता हुआ निःश्रेयस को भी प्राप्त कर सके। अस्तु वर्तमान समय में शिक्षा मानवतावादी मान्यता पर आधारित होनी चाहिए जिसमें प्रकाश प्रवृत्ति और जड़ता के तत्वों का समन्वय हो। ऐसी शिक्षा द्वारा निर्मित मानव वैदिक कालीन महान ऋषि के तुल्य होगा जो जागतिक सुखों का उपभोग करता हुआ व सृष्टि के सौंदर्य को निखारता हुआ उस योग व सौंदर्य द्वारा ईश्वरीय अनुकंपा से तादात्म्य करने का प्रयास करे।

शैक्षिक व्यवस्था के अंतर्गत यह देखने में आ रहा है कि शिक्षा की योजनाएँ, उद्देश्य, मूल्यांकन प्रविधियों को समय-समय पर विभिन्न आयोगों, समितियों द्वारा मनोयोगपूर्वक निर्मित किया जाता रहा है। परंतु समस्या तब आती है जब इन योजनाओं, उद्देश्यों से मनोवांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते। कारण स्पष्ट है— उचित क्रियान्वयन का अभाव। प्रारम्भ से अब तक जितनी भी सार्थक योजनाएँ बनाई गईं, क्रियान्वयन के अभाव में मात्र प्रतिवेदनों के पृष्ठों तक ही सीमित रह गईं। सैद्धान्तिक रूप से शिक्षा को मानव, समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड के सर्वांगीण कल्याण के लिए नियोजित किया जाता है किंतु उसको व्यावहारिक रूप से उसी लगन तथा कर्मठता के साथ क्रियान्वित नहीं किया जा रहा। जब मानव अपना सात्विक स्वरूप विस्मृत करके मात्र भौतिकता के प्रवाह में कोई भी कार्य करता है तो उस कार्य में निःस्वार्थ भावना की अपेक्षा स्वार्थ की भावना, सर्वकल्याण के स्थान पर आत्मकल्याण तथा सत्त्वगुण के स्थान पर तमोगुण बलवती हो जाता है। यही कारण है कि मानव सम्पूर्ण रूप से चैतन्य होकर सही रूप से विचार तो करता है, परंतु क्रियान्वयन के समय उसकी तामसिक प्रवृत्ति उसकी सात्विक प्रवृत्ति पर हावी हो जाती है जिससे आदर्श रूप में वह कार्य को क्रियान्वित नहीं कर पाता। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है — नवोदय विद्यालयों की स्थापना। ये वास्तव में गरीब प्रतिभाशाली वर्ग को शिक्षित करने के लिए संचालित किए जाते हैं, परंतु ग्रामीण तक तो उनकी योजना जा ही नहीं पाती तथा समाज का धनाढ्य वर्ग इसका लाभ उठा लेता है। अस्तु निवोदय विद्यालय गुरुकुलों का रूप नहीं ले पा रहे। इसका कारण है शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य मानवीय आत्मीयता का अभाव और भौतिकता प्रेरित आडंबर का दिखावा। जबकि नवोदय विद्यालय जैसी संकल्पना को साकार करने हेतु सरकारी प्रयास में कोई कमी नहीं है, फिर भी हम स्व-मानसिकता के कारण उसे उदात्त मानवीय संबंधों में परिणित नहीं कर पा रहे। वर्तमान शिक्षा का प्रत्यय जीवन जीने के मानदंड (भोग के साधनों) से हटकर जीवन के मानदंड (चरित्र, सत्य, प्रेम, अहिंसा) के रूप में ढालना होगा। पद्धति द्वय की प्रासंगिकता तभी है जब परंपरागतता तथा आधुनिक सभ्यता व संस्कृति, आध्यात्मिक व भौतिकता में सामंजस्य करके शिक्षा व्यवस्था क्रियान्वित हो।

यह तो सर्वमान्य सत्य कथन है कि परंपरागत चिंतन के आधार पर ही वर्तमान समय में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया गतिशील है। उदाहणार्थ — प्रोफ़ेसर ओड[7] के अनुसार "हमारी आधुनिक शिक्षण विधियाँ जिनमें प्रत्यक्ष, निगमन-आगमन, प्रयोगात्मक, प्रोजेक्ट विधि, वैज्ञानिक विधि, संश्लेषण-विश्लेषण विधियाँ, चर्चा विधि, स्वाध्याय विधि, न्याय के विविध प्रमाणों के अंतर्गत आ जाती हैं"। डॉ. राधाकृष्णन[8] भी इस कथन को अनुमोदित करते हैं – न्यायदर्शन की सबसे बड़ी देन इसकी समीक्षात्मक तथा वैज्ञानिक अन्वेषण की तर्क शैली है।''वर्तमान समय में यदि शिक्षक को शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न दृश्य-श्रव्य सामग्री, यथा – कंप्यूटर, प्रोजेक्टर आदि की सहायता प्राप्त हो रही है तो यह शिक्षा के सन्दर्भ में उचित है किंतु फ़िर भी शिक्षक के महत्व को इन यंत्रों के प्रकाश में नकारा नहीं जा सकता क्योंकि शिक्षक के पास संवेदनाएँ हैं जो यह यंत्र कभी विकसित नहीं कर सकते, इन्हीं संवेदनाओं के माध्यम से शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध प्रगाढ़ होते हैं। अस्तु शिक्षक इन यंत्रों का जब तक स्वामी रहेगा तब तक शिक्षण कार्य सुचारू रूप से क्रियान्वित होगा परंतु जैसे ही वह इनका दास होगा तभी से समस्या अपना विकराल रूप धारण कर लेगी।

परंपरागत भारतीय चिंतन के परिवेश में मानव को मूलतः आध्यात्मिक प्राणी माना गया है जिसे वर्तमान में भुलाया नहीं जाना चाहिए, वरन् सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों के संदर्भ में मानव के व्यावहारिक परिवर्तन की आकांक्षा की जा रही है। आज पश्चिम के विज्ञान के अतिरेक तथा पूर्व के आध्यात्म को समन्वित करके एक नवीन मानव स्वरूप की कल्पना करना आनंददायक है जिसमें विज्ञान व आध्यात्म दोनों एक ही मानव की दो भुजाएँ बनें तथा शिक्षा इसके लिए सेतु का कार्य करे। परंपरागत निरपेक्ष आध्यात्मवादी विचार आधुनिक परिवेश में अपना औचित्य तभी सिद्ध कर सकते हैं जब वे अपने अंतस में यथार्थवादी आधुनिक प्रत्ययों को समाहित करने के लिए अपना दृष्टिकोण व्यापक करें।

वर्तमान में विज्ञान एवं तकनीकी को शिक्षा में सम्मिलित करना आवश्यक है। किंतु विज्ञान के नाम पर मात्र प्रौद्योगिकी अथवा यंत्र विज्ञान तक सोचना मानव की संकुचित मानसिकता का परिचायक है क्योंकि प्रौद्योगिकी एक महान समाज को जन्म दे सकती है, जिसमें मानव का बाह्य व्यक्तित्व सुख व समृद्धि से परिपूर्ण होगा, परंतु आंतरिक सुख व समृद्धि के लिए आध्यात्मिक भावना का होना नितांत आवश्यक है तभी एक शिव समाज की संकल्पना को साकार रूप प्राप्त होगा। मानव तभी पूर्ण होगा जब उसके आंतरिक व बाह्य व्यक्तित्व में समन्वय हो। वैज्ञानिक मनस् प्रत्यक्षाधारित, तथ्यात्मक है, जबकि आध्यात्मिक मनस् सत्याभिभूत, शांत, निर्दोष, सार्वभौम मनस् है जिसमें विज्ञान तथा आध्यात्म एकरस हैं। अस्तु आधुनिक समस्त शैक्षिक चिंतन को तथ्यात्मक मनस् तथा आध्यात्म से संयुक्त करना होगा।

आधुनिक समय में शिक्षक यदि परंपरागत शब्दों को दोहराता है तो उसे उन शब्दों के अंतराल में छिपे

निहितार्थों से भी अवगत होना अपेक्षित है। यहाँ उदाहरणस्वरूप भगवद्गीता के अंतिम श्लोक के निहितार्थ का बोध किया जा सकता है।[9]

जहाँ योगेश्वर कृष्ण तथा धनुर्धारी अर्जुन हैं। अर्थात् दोनों का तादात्म्य है वहीं पर श्रीविभूति तथा ध्रुवनीति हैं। स्पष्ट है कि कृष्ण आध्यात्म के तथा अर्जुन यथार्थ के प्रतीक हैं। कृष्ण काव्य हैं तो अर्जुन गद्य, कृष्ण हृदय हैं तो अर्जुन मनस्, कृष्ण आत्मा हैं तो अर्जुन बुद्धि, कृष्ण आंतरिकता हैं तो अर्जुन बाह्यता। आशय यह है कि मानव को एक साथ कृष्णार्जुन का रूप धारण करना होगा तभी आज के युग में भी सम्यक् मानव निर्माण संभव हो सकता है।

मानव अस्तित्व में वस्तुतः बुद्धि ही मुख्य तत्व है जो संस्कृति एवं सभ्यता को दिशा प्रदान करती है। यदि आज मानव की शिक्षा का मूल लक्षण मात्र विवेकज्ञान की प्राप्ति मान ली जाए तो विवेक की यात्रा का अंतिम सोपान मोक्ष ही होगा। जबकि मानव, जो एक सामाजिक प्राणी है, के लिए सभी प्रकार की स्वतंत्रताएँ अथवा मुक्तियाँ आवश्यक हैं। अतः उसे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की स्वतंत्रताएँ उपलब्ध करना भी शिक्षा का परम कर्तव्य है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि विचार शक्ति चैतन्य मानव के साधन हैं। जिनका आधार विवेक बुद्धि है जिसके द्वारा अनेक प्रकार की स्वतंत्रताएँ उपलब्ध करते हुए परम मुक्ति की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है।

वर्तमान विज्ञान तथा तकनीकी युग में समग्र विश्व में आधुनिकता की लहर वर्तमान विज्ञान तथा तकनीकी युग में समग्र विश्व में आधुनिकता की लहर प्रवाहित होने से भारतीय संस्कृति की परंपरागत एवं सरंचना में सतत परिवर्तन आ रहा है। परिवर्तित मानसिकता के अंतर्गत व्यक्ति संस्कृति के साथ-साथ सभ्यता के नवीन आयामों तक पहुँच रहा है किंतु उसे भारतीय चिंतन का मूल-मंत्र दया, करुणा, परोपकार तथा विश्व बंधुत्व की भावना को साथ लेकर चलना होगा तथा समाज को नियमित व अनुशासित करने वाली नीतियों को शक्तिशाली बनाना होगा। यह सब कार्य करने के लिए वर्तमान शिक्षा द्वारा समसामयिक परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं पर विचार करते हुए ऐसी सामाजिक संस्कृति को विकसित करना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है जो वर्तमान को सफल तथा भविष्य को सुरक्षित कर सके। भारतीय परंपराओं के अक्षत स्रोत तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की 'पद्धति द्वय' इस नव निर्माण में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान कर सकती है। अतः शिक्षा का कर्तव्य है कि वह राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करते हुए वैज्ञानिक विवेक तथा चेतना-शक्ति द्वारा राष्ट्र को समसामयिक स्वरूप प्रदान करे तथा अपनी प्रबल विचार-शक्ति के बल पर नवीन ज्ञान-पद्धतियों के उद्भासन द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव का संवर्द्धन व पोषण करे।

Chapter 5.indd 52 5/11/2017 2:56:23 PM

टिप्पणी

[1] www.newworldencyclopaedia.org/entry/Socrates

[2] https://philosophy.knoji.com/aristotles-philosophy-of-scientific-knowled

[3] http://www.friesian.com/kant.htm

[4] https://books.google.co.in/books?isbn=8120341821

[5] स्पेरी, आर. डब्ल्यू. 1981.चेंजिंग प्रायोरिटीज़. *एनुअल रिव्यू ऑफ़ न्यूरोसाइंस. 4, 1-5. रीट्राइव्ड फ़्रॉम एनुअल रिव्यू.*

[6] http://www.wisdompage.com/SperryOnValues.pdf

[7] ओड, एल. के. 1983. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. पृ० 199. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकेडमी. जयपुर.

[8] डॉ० राधाकृष्णन, एस. 2013. *भारतीय दर्शन II* (हिंदी अनुवाद). पृ० 172.

[9] यंत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
यंत्र श्रीर्विजयो भूर्तिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। गीता, 18, 18.